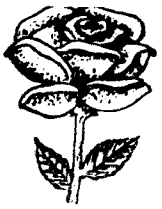

योग और नारी

☐ पं. गोविन्दराम व्यास

भारतीय दर्शनों का चरम लक्ष्य मोक्ष है और मोक्ष दुःखों की एकान्तिक व आत्यन्तिक निवृत्ति है। कितने ही दार्शनिकों ने दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति के स्थान पर शाश्वत व सहज सुख-लाभ को मोक्ष माना है। इन दोनों बातों में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि सुख की उपलब्धि होने पर दुःखों की आत्यन्तिक और एकान्तिक निवृत्ति अपने आप हो जाती है। वैशेषिक, नैयायिक, सांख्य, योग एवं बौद्धदर्शन दुःख की निवृत्ति को मोक्ष मानते हैं तो वेदान्त और जैनदर्शन शाश्वत व सहज सुख-लाभ को मोक्ष मानते हैं। वेदान्तदर्शन में ब्रह्म को सच्चिदानन्दस्वरूप माना है तो जैनदर्शन में भी आत्मा को अनन्तसुखस्वरूप माना है। उस अनन्तसुख की अभिव्यक्ति मोक्ष प्राप्त होने पर होती है।

विभिन्न दर्शनों ने मोक्ष-प्राप्ति के लिए विविध उपाय प्रतिपादित किये हैं। महर्षि पतंजलि ने योग साधना का एक बहुत ही सुन्दर क्रम प्रस्तुत किया है। अन्य दर्शनों ने भी अपनी परम्परा, बुद्धि, रुचि तथा शक्ति की दृष्टि से उसका निरूपण किया है। भारत की वैदिक, बौद्ध और जैन इन तीनों परम्पराओं ने योग जैसी महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक और विकास प्रक्रिया से सम्बन्धित विषय पर उत्कृष्ट साहित्य का सृजन किया है। तीनों ही परम्पराओं के मूर्धन्य मनीषियों ने अनेक योग विषयक ग्रन्थ विविध भाषाओं में लिखे हैं।

पुरुषों ने ही योग साधना नहीं की है अपितु महिला वर्ग भी योग साधना में सदा अग्रसर रहा है। योग वह आध्यात्मिक साधना है जिसमें लिंग-भेद बाधक नहीं है। चाहे पुरुष हो चाहे नारी हो, वे समानरूप से योग की साधना कर सकते हैं और अपने जीवन को आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण विकसित कर सकते हैं।

जैनयोग पर लिखने वाले सर्वप्रथम आचार्य हरिभद्र हैं। उनका समय आठवीं शती है। आचार्य हरिभद्र ने योगशतक तथा योगविंशिका ये दो ग्रन्थ प्राकृत भाषा में तथा योगबिन्दु और योगदृष्टिसमुच्चय ये दो ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे। योग के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है वह केवल जैनयोग साहित्य में ही नहीं अपितु योग विषयक समस्त चिन्तनधारा में एक नयी देन है। जैन साहित्य में आध्यात्मिक विकास-क्रम का वर्णन चतुर्दश गुण-स्थानों के रूप में किया है। संक्षेप में बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा इन आत्म-अवस्थाओं को लेकर भी आध्यात्मिक विकास का वर्णन किया गया है। आचार्य हरिभद्र ने इस अध्यात्म विकास क्रम को योग रूप में निरूपित किया है। उन्होंने इस निरूपण में जो शैली अपनायी वह अन्य योग-विषयक ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होती। उन्होंने प्रस्तुत क्रम को आठ योगदृष्टियों के रूप में विभक्त किया है। योगदृष्टिसमुच्चय में उन्होंने आठ प्रकार की योगदृष्टियाँ बतायी हैं—

मित्रा[१] तारा[२] बला[३] दीप्रा[४] स्थिरा[५] कान्ता[६] प्रभा[७] परा[८]।
नामानि योगदृष्टीनां लक्षणं च निबोधत॥

इन आठों दृष्टियों के नाम स्त्रीलिंगवाची हैं। मेरी दृष्टि में उस युग में इन नामों वाली योग में पूर्ण निष्णात महिलाएँ होंगी। उन्हीं के नामों पर ये आठ दृष्टियाँ रखी गयी हों। सर्वप्रथम दृष्टि का नाम 'मित्रा' है। महिला वर्ग में मित्रता का भाव सहज रूप से होता है। एतदर्थ ही महाभारतकार व्यास ने "**साप्तपदिनं मैत्रं**" लिखा है। पौराणिक आख्यान है कि सत्यवान की आत्मा को यमलोक ले जाते हुए यमराज के साथ सावित्री सात कदम चलकर जाती है जिससे यमराज के साथ उसका मैत्री-सम्बन्ध हो जाता है। फलस्वरूप सत्यवान को पुनः जीवित लेकर योग-शक्ति से वह पृथ्वी पर आती है। मेरी मान्यता है कि नारी अपने मैत्री बल पर यम पर भी विजय प्राप्त कर सकती है। एतदर्थ ही योगदृष्टि में सर्वप्रथम 'मित्रा' दृष्टि रखी गयी है। इससे यह सिद्ध है कि जहाँ पर मित्रा दृष्टि है और अपने प्रिय के प्रति देवत्व भाव है उसे अपनी इच्छाओं के प्रदर्शन करने की आवश्यकता नहीं होती। यही बात निम्न श्लोक में भी प्रतिध्वनित हो रही है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मित्रायां दर्शनं मन्दं यम-इच्छादिकस्तथा ।
अखेदोदेव कार्यादा.....॥[1]

दूसरी दृष्टि का नाम 'तारा' है। तारा भारतीय संस्कृति के गौरव की प्रतीक नारी है जिसने अपने पति हरिश्चन्द्र के सत्य को जीवित रखने हेतु अपने आप में ही अगाध कष्ट को सहन करना स्वीकार किया। महारानी होने पर भी वह एक ब्राह्मण के घर में दासी बनकर कठोर कष्ट सहन करती है जो एक महासती के गौरव के अनुकूल है। तारा दृष्टि के विश्लेषण में आचार्य ने यही स्वरूप प्रतिपादित किया है। जैसे हरिश्चन्द्र को देखने में महासती तारा कुछ स्पष्ट रही वैसे ही तारादृष्टि में कुछ दर्शन स्पष्ट होता है। उसमें भी नियम का सम्यक् प्रकार से पालन किया जाता है। वह हित की प्रवृत्ति में उद्विग्न नहीं होती, और तत्त्व के सम्बन्ध में सदा जिज्ञासु बनी रहती है। एतदर्थ ही कहा है—

तारायां तु मनाक् स्पष्टं नियमश्च तथाविधः ।
अनुद्वेगो हितारम्भे जिज्ञासा तत्त्वगोचरा ॥[2]

योग की भूमि पर नारी अपने आराध्यदेव के दर्शन हेतु कुछ स्पष्ट होती है और नियम के पालन में पूर्ण तत्पर होती है जिससे आराध्य के अन्तर्मानस में किंचित् मात्र भी उद्वेग न हो। तारा नेत्रों के पलकों में प्रमुदित होने वाली वह दिव्य ज्योति है जो सती होकर योग-साधना की एक श्रेष्ठ पगडण्डी भी है।

तृतीय योगदृष्टि का नाम 'बला' है। भारतीय नीति साहित्य में नारी को जहाँ अबला कहा गया है वहाँ वह सबला भी है। नारी बल की प्रतीक है। शक्ति की उपासना के लिए दुर्गा की आराधना की जाती है। मेरी दृष्टि से बला नामक कोई नारी अतीत काल में हुई है जिसने अपने अतुल बल से नारी समाज के गौरव में चार चाँद लगाये। वह स्थिरासन होकर आत्मसाधना में सदा तल्लीन रहती होगी और आक्षेप, विक्षेप, प्रक्षेप जो साधना में बाधक हैं उन्हें जीवन में नहीं आने देती होगी। वह बला जितनी दृढ़ थी उतनी ही दक्ष भी थी। इस प्रकार दृढ़ता और दक्षता का अपूर्व संगम उसमें था। आचार्य ने भी इन्हीं दृढ़ता, दक्षता, स्थिरता आदि भावों को बलादृष्टि के निरूपण में स्पष्ट किया है—

सुखासनसमायुक्त बलायां दर्शनं वृढम् ।
परा च तत्त्वशुश्रूषा न क्षेपो योगगोचरः ॥[3]

चतुर्थ दृष्टि का नाम 'दीप्रा' है। दीप्रा जो सदा साधना की ज्योति को प्रदीप्त रखती है। जब भी साधना में विचार धूमिल होने लगते हैं तब दीप्रा उस ज्योति को पुनः प्रदीप्त करती है। सम्भव है दीप्रा नामक कोई विशिष्ट नारी रही होगी जिसने साधना के अखण्ड दीप को प्रज्वलित रखा हो। जैन साहित्य में बाहुबलि को अभिमान के गज से उतारने वाली ब्राह्मी और सुन्दरी थीं और रथनेमि को साधना में स्थिर करने वाली राजीमती थी। ऐसी ही नारियों से साधना दीप्त रही है। अतः योगदृष्टियों में भी दीप्रा का उल्लेख किया गया है।

पाँचवीं योगदृष्टि का नाम 'स्थिरा' है जो स्थिरता के भावों को प्रगटाने का विधान प्रस्तुत करती है। नारी पृथ्वी के समान स्थिर है, हिमालय की तरह अडिग है। निर्मल भावभूमि पर अवस्थित होकर वह साधना में स्थिर रहने की प्रबल प्रेरणा प्रदान करती है। बिना स्थिरादृष्टि के परिवार, समाज और राष्ट्र की स्थिति विषम बन जाती है। इसीलिए साधना में भी स्थिरा की आवश्यकता है। आचार्य ने स्थिरादृष्टि का निम्न प्रकार से वर्णन किया है—

स्थिरायां दर्शनं नित्यं प्रत्याहारवदेव च ।
कृत्यमभ्रान्तमनघं सूक्ष्मबोध समन्वितम् ॥[4]

छठी दृष्टि का नाम 'कान्ता' है। विभाव से निवृत्ति और स्वभाव में प्रवृत्ति यही कान्ता की कमनीयता है। महर्षि पतंजलि ने योग का छठा अंग धारणा माना है। धारणा का वास्तविक अर्थ है आत्मा के सद्गुणों को धारण करना। अध्यात्मोपनिषद् में लिखा है—"**आत्मप्रवृत्तौ अतिजागरूकः, परप्रवृत्तौ बधिरान्धमूकः ।**" अपने आत्मा की कान्ति में कान्ता बनी हुई नारी सदा ज्योतिर्मान रहती है। पर-भाव का परित्याग कर आत्मभाव में रहती है। पर-भाव में वह अन्धे, गूँगे और बहरे के समान बन जाती है। अपने कान्तभाव के अतिरिक्त उसे कहीं पर भी आनन्द की उपलब्धि नहीं होती। यही भाव आचार्य ने कान्तादृष्टि में व्यक्त किये हैं—

कान्तायामेतदन्येषा प्रीतये धारणा परा ।
अतोऽत्र नान्यमुन्नित्यं मीमांसाऽस्ति हितोदया ॥[5]

सातवीं दृष्टि का नाम 'प्रभा' है। प्रभा को आचार्य ने ध्यान-प्रिया कहा है। ध्येय में बुद्धि को स्थिर कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी समाज के हलचलों में रहती हुई भी ध्यानारूढ़ रहती है। भले ही वह एकान्त, शान्त, जंगल में एकाकी आसन न लगाती हो, और भले ही योगियों की तरह योग का प्रदर्शन न करती हो, क्योंकि उसका शारीरिक संस्थान इस प्रकार का है कि वह योगियों की तरह बाह्यरूप से साधना न कर पाती, पर प्रतिपल प्रतिक्षण तत्त्व के अनुशीलन में अग्रणी रह सकती है और अपनी प्रभा से जन-मानस को योग साधना की ओर अग्रसर कर सकती है।

योग की आठवीं दृष्टि का नाम 'परा' है। परा का अर्थ 'उस पार' है। जो जीवन के उस पार ले जाने वाली हो, संसार से पार उतारने वाली हो, वह परा-दृष्टि है। नारी पुत्र, पौत्र तथा पति के लिए सर्वस्व समर्पण कर असंग दोष से मुक्त रहती है। स्नेह सद्भावना के साथ वह संकटों से पार उतारती है, संशयों को नष्ट करती है और समाधि में स्थिर करती है। मेरी दृष्टि से नारी के उस ज्वलन्त रूप का चित्रण आचार्य हरिभद्र ने परादृष्टि में किया है—

समाधे निष्ठा तु परा तदासंग विवर्जिता।
सात्मीकृत प्रवृत्तिश्च तदुत्तीर्णाशयेति च॥[1]

प्रस्तुत निबन्ध में आचार्यप्रवर हरिभद्र सूरि की आठ योगदृष्टियों का अवलम्बन लेकर मैंने अपनी कल्पना से योगदृष्टियों का सम्बन्ध भारतीय नारियों के साथ किया है। मेरा ऐसा मानना है कि भारत की विशिष्ट नारियों के आधार पर और उनके सद्गुणों को सलंक्ष्य में रखकर ही इन दृष्टियों के नाम रखे गये हों। नारी नागिन नहीं अपितु नारायणी है। प्रेरणा की पुनीत प्रतिमा है, साधना की ओर बढ़ने की पवित्र प्रेरणा देने वाली विशिष्ट साधिका है। वह सदा साधना के क्षेत्र में आगे रही है। पुरुषों से उसके कदम साधना में सदा आगे रहे हैं। जैनदर्शन के अनुसार ही सर्वप्रथम मुक्ति प्राप्त करने वाली माता मरुदेवी, एक नारी ही थी। प्रत्येक युग में नारी साधना की दृष्टि से अग्रणी रही है। यदि आधुनिक युग में भी नारी योग के क्षेत्र में आगे बढ़े तो योग के नये-नये आयाम उद्घाटित हो सकते हैं। क्योंकि नारी में वह शक्ति है, वह सामर्थ्य है जो अधिक आध्यात्मिक विकास कर सकती है।

सन्दर्भ तथा सन्दर्भ स्थल :

१ योगदृष्टिसमुच्चय, श्लोक २१।
२ योगदृष्टिसमुच्चय, श्लोक ४१।
३ योगदृष्टिसमुच्चय, श्लोक ४९।
४ योगदृष्टिसमुच्चय, श्लोक १५४।
५ योगदृष्टिसमुच्चय, श्लोक १६२।
६ योगदृष्टिसमुच्चय, श्लोक १७८।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org